14
मोहन राकेश
(जन्म : 1925 ई. / मृत्यु : 1972 ई.)

जीवन परिचय -

नई कहानी आन्दोलन के सशक्त हस्ताक्षर मोहन राकेश का जन्म 8 जनवरी 1925 को अमृतसर में हुआ था। इन्होंने पंजाब विश्वविद्यालय से हिन्दी और अंग्रेजी में एम.ए. किया। जीविकोपार्जन के लिए कुछ वर्षों तक अध्यापन का कार्य किया। इस प्रसंग में वे लाहौर, मुम्बई, शिमला, जालंधर और दिल्ली में रहे। कुछ वर्षों तक कहानी की प्रसिद्ध पत्रिका 'सारिका' का संपादन किया। 'आषाढ़ का एक दिन' एवं 'आधे–अधूरे' नाटक के लिए संगीत नाटक अकादमी ने इन्हें 1968 में पुरस्कृत एवं सम्मानित किया। 3 दिसम्बर 1972 को नई दिल्ली में इनका असमय निधन हुआ।

प्रमुख कृतियाँ -

उपन्यास	–	अंधेरे बन्द कमरे, अन्तराल, न आने वाला कल
नाटक	–	आषाढ़ का एक दिन, लहरों के राजहंस, आधे–अधूरे
कहानी संग्रह	–	क्वार्टर तथा अन्य कहानियाँ, वारिस तथा अन्य कहानियाँ
निबंध संग्रह	–	परिवेश
भ्रमण वृत्तान्त	–	आख़िरी चट्टान तक

पाठ परिचय -

प्रस्तुत पाठ 'आखिरी चट्टान' एक रोचक यात्रा संस्मरण है। दिसम्बर 1952 से फरवरी 1953 के बीच मोहन राकेश ने गोआ से कन्याकुमारी तक की यात्रा की थी। मानव–मनोविज्ञान और सामाजिक संरचना की सूक्ष्म समझ के कारण यह यात्रा वृत्तान्त भौतिक विवरण और आन्तरिक मनोदशा का उदाहरण बन गई है। भाषा इतनी पारदर्शी है कि लेखक के अनुभव पाठक के अनुभव में रूपान्तरित होने लगते हैं। कन्याकुमारी के सूर्यास्त एवं सूर्योदय का अत्यन्त सूक्ष्म अंकन इस पाठ की अनुपम विशेषता है। मानो लेखक ने कलम से प्रकृति का चित्रांकन किया हो।

आख़िरी चट्टान

कन्याकुमारी। सुनहले सूर्योदय और सूर्यास्त की भूमि।

केप होटल के आगे बने बाथ टैंक के बायीं तरफ, समुद्र के अन्दर से उभरी स्याह चट्टानों में से एक पर खड़ा होकर मैं देर तक भारत के स्थल–भाग की आख़िरी चट्टान को देखता रहा। पृष्ठभूमि में कन्याकुमारी के मन्दिर की लाल और सफ़ेद लकीरें चमक रही थीं। अरब सागर, हिन्द महासागर और बंगाल की खाड़ी–इन तीनों के संगम–स्थल–सी वह चट्टान, जिस पर कभी स्वामी विवेकानन्द ने समाधि लगायी थी, हर तरफ से पानी की मार सहती हुई स्वयं भी समाधि– स्थित–सी लग रही थी। हिन्द महासागर की ऊँची–ऊँची लहरें मेरे आसपास की स्याह चट्टानों से टकरा रही थीं। बलखाती लहरें रास्ते की नुकीली चट्टानों से कटती हुई आती थीं जिससे उनके ऊपर चूरा बूँदों की जालियाँ बन जाती थीं। मैं देख रहा था और अपनी पूरी चेतना से महसूस कर रहा था–शक्ति का विस्तार, विस्तार की शक्ति। तीनों तरफ से क्षितिज तक पानी–ही–पानी था, फिर भी सामने का क्षितिज, हिन्द महासागर का, अपेक्षया अधिक दूर और अधिक गहरा जान पड़ता था। लगता था कि उस ओर दूसरा छोर है ही नहीं। तीनों ओर के क्षितिज को आँखों में समेटता मैं कुछ देर भूला रहा कि मैं मैं हूँ, एक जीवित व्यक्ति, दूर से आया यात्री, एक दर्शक। उस दृश्य के बीच में जैसे दृश्य का एक हिस्सा बनकर खड़ा रहा–बड़ी–बड़ी चट्टानों के बीच एक छोटी–सी चट्टान जब अपना होश हुआ, तो देखा कि मेरी चट्टान भी तब तक बढ़ते पानी में काफी घिर गयी है। मेरा पूरा शरीर सिहर गया। मैंने एक नज़र फिर सामने के उमड़ते विस्तार पर डाली और पास की एक सुरक्षित चट्टान पर कूदकर दूसरी चट्टानों पर से होता हुआ किनारे पर पहुँच गया।

पश्चिमी क्षितिज में सूर्य धीरे–धीरे नीचे जा रहा था। मैं सूर्यास्त की दिशा में चलने लगा। दूर पश्चिमी तट–रेखा के एक मोड़ के पीली रेत का एक ऊँचा टीला नज़र आ रहा था। सोचा उस टीले पर जाकर सूर्यास्त देखूँगा।

यात्रियों की कितनी ही टोलियाँ उस दिशा में जा रही थीं। मेरे आगे कुछ मिशनरी युवतियाँ मोक्ष की समस्या पर विचार करती चल रही थीं। मैं उनके पीछे–पीछे चलने लगा–चुपके से मोक्ष का कुछ रहस्य पा लेने के लिए। यूँ उनकी बातों से कहीं रहस्यमय आकर्षण उनके युवा शरीरों में था और पीली रेत की पृष्ठभूमि में उनके लबादों के हिलते हुए स्याह–सफ़ेद रंग बहुत आकर्षक लग रहे थे। मोक्ष का रहस्य अभी बीच में ही था कि हम लोग टीले पर पहुँच गये। यह वह 'सैंड हिल' थी जिसकी चर्चा मैं वहाँ पहुँचने के बाद से ही सुन रहा था। सैंड हिल पर बहुत–से लोग थे। आठ–दस नवयुवतियाँ, छह–सात नवयुवक और दो–तीन गाँधी टोपियोंवाले व्यक्ति। वे शायद सूर्यास्त देख रहे थे। गवर्नमेंट गेस्ट हाउस के बैरे उन्हें सूर्यास्त के समय की कॉफ़ी पिला रहे थे। उन लोगों के वहाँ होने से सैंड हिल बहुत रंगीन हो उठी थी। कन्याकुमारी का सूर्यास्त देखने के लिए उन्होंने विशेष रुचि के साथ

सुन्दर रंगों का रेशम पहना था। हवा समुद्र की तरह उस रेशम में भी लहरें पैदा कर रही थी। मिशनरी युवतियाँ वहाँ आकर थकी–सी एक तरफ़ बैठ गयीं–उस पूरे कैनवस में एक तरफ़ छिटके हुए कुछ बिन्दुओं की तरह। उनसे कुछ दूर का एक रंगहीन बिन्दु, मैं, ज़्यादा देर अपनी जगह स्थिर नहीं रह सका। सैंड हिल से सामने का पूरा विस्तार तो दिखाई दे रहा था, पर अरब सागर की तरफ़ एक और ऊँचा टीला था जो उधर के विस्तार को ओट में लिये था। सूर्यास्त पूरे विस्तार की पृष्ठभूमि में देखा जा सके, इसके लिए मैं कुछ देर सैंड हिल पर रुका रहकर आगे उस टीले की तरफ़ चल दिया। पर रेत पर अपने अकेले क़दमों को घसीटता वहाँ पहुँचा, तो देखा कि उससे आगे उससे भी ऊँचा एक और टीला है। जल्दी–जल्दी चलते हुए मैंने एक के बाद एक कई टीले पार किये। टाँगें थक रही थीं, पर मन थकने को तैयार नहीं था। हर अगले टीले पर पहुँचने पर लगता कि शायद अब एक ही टीला और है, उस पर पहुँचकर पश्चिमी क्षितिज का खुला विस्तार अवश्य नज़र आ जाएगा, और सचमुच एक टीले पर पहुँचकर वह खुला विस्तार सामने फैला दिखाई दे गया– वहाँ से दूर तक रेत की लम्बी ढलान थी, जैसे वह टीले से समुद्र में उतरने का रास्ता हो। सूर्य तब पानी से थोड़ा ही ऊपर था। अपने प्रयत्न की सार्थकता से सन्तुष्ट होकर मैं टीले पर बैठ गया–ऐसे जैसे वह टीला संसार की सबसे ऊँची चोटी हो, और मैंने, सिर्फ़ मैंने, उस चोटी को पहली बार सर किया हो।

पीछे दायीं तरफ़ दूर–दूर हटकर उगे नारियलों के झुरमुट नज़र आ रहे थे। गूँजती हुई तेज़ हवा से उनकी टहनियाँ ऊपर को उठ रही थीं। आकाश की तरफ़ उठकर हिलती हुई वे टहनियाँ ऐसे लग रही थीं जैसे उन्मुक्त रति के क्षणों में किन्हीं नग्न वन–युवतियों की बाँहें। पश्चिमी तट के साथ–साथ सूखी पहाड़ियों की एक शृंखला दूर तक चली गयी थी जो सामने फैली रेत के कारण बहुत रूखी, बीहड़ और वीरान लग रही थी। सूर्य पानी की सतह के पास पहुँच गया था। सुनहली किरणों ने पीली रेत को एक नया–सा रंग दे दिया था। उस रंग में रेत इस तरह चमक रही थी जैसे अभी–अभी उसका निर्माण करके उसे वहाँ उँडेला गया हो। मैंने उस रेत पर दूर तक बने अपने पैरों के निशानों को देखा। लगा जैसे रेत का कुँवारापन पहली बार उन निशानों से टूटा हो। इससे मन में एक सिहरन भी हुई, हल्की उदासी भी घिर आयी।

सूर्य का गोला पानी की सतह से छू गया। पानी पर दूर तक सोना–ही–सोना ढुल आया। पर वह रंग इतनी जल्दी बदल रहा था कि किसी भी एक क्षण के लिए उसे एक नाम दे सकना असम्भव था। सूर्य का गोला जैसे एक बेबसी में पानी के लावे में डूबता जा रहा था। धीरे–धीरे वह पूरा डूब गया और कुछ क्षण पहले जहाँ सोना बह रहा था, वहाँ अब लहू बहता नज़र आने लगा। कुछ और क्षण बीतने पर वह लहू भी धीरे–धीरे बैंज़नी और बैंज़नी से काला पड़ गया। मैंने फिर एक बार मुड़कर दायीं तरफ़ पीछे देख लिया। नारियलों की टहनियाँ उसी तरह हवा में ऊपर उठी थीं, हवा उसी तरह गूँज रही थी, पर पूरे दृश्यपट पर स्याही फैल गयी थी। एक–दूसरे से दूर खड़े झुरमुट, स्याह पड़कर, जैसे लगातार सिर धुन

रहे थे और हाथ–पैर पटक रहे थे। मैं अपनी जगह से उठ खड़ा हुआ और अपनी मुट्ठियाँ भींचता–खोलता कभी उस तरफ़ और कभी समुद्र की तरफ़ देखता रहा।

अचानक ख़याल आया कि मुझे वहाँ से लौटकर भी जाना है। इस ख़याल से ही शरीर में कँपकँपी भर गयी। दूर सैंड हिल की तरफ़ देखा। वहाँ स्याही में डूबे कुछ धुँधले रंग हिलते नज़र आ रहे थे। मैंने रंगों को पहचानने की कोशिश की, पर उतनी दूर से आकृतियों को अलग–अलग कर सकना सम्भव नहीं था। मेरे और उन रंगो के बीच स्याह पड़ती रेत के कितने ही टीले थे। मन में डर समाने लगा कि क्या अँधेरा होने से पहले मैं उन सब टीलों को पार करके जा सकूँगा ? कुछ क़दम उस तरफ़ बढ़ा भी। पर लगा कि नहीं। उस रास्ते से जाऊँगा, तो शायद रेत में ही भटकता रह जाऊँगा। इसलिए सोचा बेहतर है नीचे समुद्र–तट पर उतर जाऊँ–तट का रास्ता निश्चित रूप से केप होटल के सामने तक ले जाएगा। निर्णय तुरन्त करना था, इसलिए बिना और सोचे मैं रेत पर बैठकर नीचे तट की तरफ़ फिसल गया। पर तट पर पहुँचकर फिर कुछ क्षण बढ़ते अँधेरे की बात भूला रहा। कारण था तट की रेत। यूँ पहले भी समुद्र–तट पर कई–कई रंगों की रेत देखी थी– सुरमई, ख़ाकी, पीली और लाल। मगर जैसे रंग उस रेत में थे, वैसे मैंने पहले कभी कहीं की रेत में नहीं देखे थे। कितने ही अनाम रंग थे वे, एक–एक इंच पर एक–दूसरे से अलग...और एक–एक रंग कई–कई रंगों की झलक लिये हुए। काली घटा और घनी लाल आँधी को मिलाकर रेत के आकार में ढाल देने से रंगों के जितनी तरह के अलग–अलग सम्मिश्रण पाये जा सकते थे, वे सब वहाँ थे– और उनके अतिरिक्त भी बहुत–से रंग थे। मैंने कई अलग–अलग रंगों की रेत को हाथ में लेकर देखा और मसलकर नीचे गिर जाने दिया। जिन रंगों को हाथों से नहीं छू सका, उन्हें पैरों से मसल दिया। मन था कि किसी तरह हर रंग की थोड़ी–थोड़ी रेत अपने पास रख लूँ। पर उसका कोई उपाय नहीं था। यह सोचकर कि फिर किसी दिन आकर उस रेत को बटोरूँगा, मैं उदास मन से वहाँ से आगे चल दिया।

समुद्र में पानी बढ़ रहा था। तट की चौड़ाई धीरे–धीरे कम होती जा रही थी। एक लहर मेरे पैरों को भिगो गयी, तो सहसा मुझे ख़तरे का एहसास हुआ। मैं जल्दी–जल्दी चलने लगा। तट का सिर्फ़ तीन–तीन चार–चार फुट हिस्सा पानी से बाहर था। लग रहा था कि जल्दी ही पानी उसे भी अपने अन्दर समा लेगा। एक बार सोचा कि खड़ी रेत से होकर फिर ऊपर चला जाऊँ। पर वह स्याह पड़ती रेत इस तरह दीवार की तरह उठी थी कि उस रास्ते ऊपर जाने की कोशिश करना ही बेकार था। मेरे मन में ख़तरा बढ़ गया। मैं दौड़ने लगा। दो–एक और लहरें पैरों के नीचे तक आकर लौट गयीं। मैंने जूता उतारकर हाथ में ले लिया। एक ऊँची लहर से बचकर इस तरह दौड़ा जैसे सचमुच वह मुझे अपनी लपेट में लेने आ रही हो। सामने एक ऊँची चट्टान थी वक़्त पर अपने को सँभालने की कोशिश की, फिर भी उससे टकरा गया। बाँहों पर हल्की खरोंच आ गयी, पर ज़्यादा चोट नहीं लगी। चट्टान पानी के अन्दर तक चली गयी थी–उसे बचाकर आगे जाने के लिए पानी में उतरना आवश्यक था। पर उस समय पानी की तरफ़ पाँव बढ़ाने का मेरा साहस नहीं हुआ। मैं चट्टान की नोकों पर पैर

रखता किसी तरह उसके ऊपर पहुँच गया। सोचा नीचे खड़े रहने की अपेक्षा वह अधिक सुरक्षित होगा। पर ऊपर पहुँचकर लगा जैसे मेरे साथ एक मज़ाक किया गया हो। चट्टान के उस तरफ़ तट का खुला फैलाव था—लगभग सौ फुट का। कितने ही लोग वहाँ टहल रहे थे। ऊपर सड़क पर जाने के लिए वहाँ से रास्ता भी बना था। मन से डर निकल जाने से मुझे अपना—आप काफ़ी हल्का लगा और मैं चट्टान से नीचे कूद गया।

रात। केप होटल का लॉन। अँधेरे में हिन्द महासागर को काटती कुछ स्याह लकीरें—एक पौधे की टहनियाँ। नीचे सड़क पर टार्च जलाता—बुझाता एक आदमी। दक्षिण—पूर्व के क्षितिज में एक जहाज़ की मद्धिम—सी रोशनी।

मन बहुत बेचैन था—बिना पूरी तरह भीगे सूखती मिट्टी की तरह। जगह मुझे इतनी अच्छी लगी थी कि मन था अभी कई दिन, कई सप्ताह, वहाँ रहूँ। पर अपने भुलक्कड़पन की वजह से एक ऐसी हिमाक़त कर आया था कि लग रहा था वहाँ से तुरन्त लौट जाना पड़ेगा। अपना सूटकेस खोलने पर पता चला था कि कनानोर में सत्रह दिन रहकर जो अस्सी—नब्बे पन्ने लिखे थे, वे वहीं मेज़ की दराज़ में छोड़ आया हूँ। अब मुझे दो में से एक चुनना था। एक तरफ़ था कन्याकुमारी का सूर्यास्त, समुद्र—तट और वहाँ की रेत। दूसरी तरफ़ अपने हाथ के लिखे काग़ज़ जो शायद अब भी सेवाय होटल की एक दराज़ में बन्द थे। मैं देर तक बैठा सामने देखता रहा—जैसे कि पौधे की टहनियों या उनके हाशिये में बन्द महासागर के पानी से मुझे अपनी समस्या का हल मिल सकता है।

कुछ देर में एक गीत का स्वर सुनाई देने लगा जो धीरे—धीरे पास आता गया। एक कान्वेंट की बस होटल के कम्पाउंड में आकर रुक गयी। बस में बैठी लड़कियाँ अँग्रेज़ी में एक गीत गा रही थीं जिसमें समुद्र के सितारे को सम्बोधित किया गया था। उस गीत को सुनते हुए और दूर जहाज़ की रोशनी के ऊपर एक चमकते सितारे को देखते हुए मन और उदास होने लगा। गहरी साँझ के सुरमई रंग में रंगी वह आवाज़ मन की गहराई के किसी कोमल रोयें को हलके—हलके सहला रही थी। लग रहा था कि उस रोयें की ज़िद शायद मुझे वहाँ से जाने नहीं देगी। लेकिन उससे भी ज़िद्दी एक और रोयाँ था— दिमाग़ के किसी कोने मे अटका—जो सुबह वहाँ से जानेवाली बसों का टाइम—टेबल मुझे बता रहा था। गीत के स्वरों की प्रतिक्रिया में साथ टाइम—टेबल के हिन्दसे जुड़ते जा रहे थे—पहली बस सात पन्द्रह, दूसरी आठ पैंतीस, तीसरी...। थोड़ी देर में बस लौट गयी, गीत के स्वर विलीन हो गये और मन में केवल हिन्दसों की चर्ख़ी चलती रह गयी।

ग्रेजुएट नवयुवक मुझे बता रहा था कि कन्याकुमारी की आठ हज़ार को आबादी में कम—से—कम चार—पाँच सौ शिक्षित नवयुवक ऐसे हैं जो बेकार हैं। उनमें से सौ के लगभग ग्रेजुएट हैं। उनका मुख्य धन्धा है नौकरियों के लिए अर्ज़ियाँ देना और बैठकर आपस में बहस करना। वह ख़ुद वहाँ फ़ोटो—अलबम बेचता था। दूसरे नवयुवक भी उसी तरह के छोटे—मोटे काम करते थे। "हम लोग सीपियों का गूदा खाते हैं और दार्शनिक सिद्धान्तों पर बहस करते

हैं," वह कह रहा था। "इस चट्टान से इतनी प्रेरणा तो हमें मिलती ही है।" मुझे दिखाने के लिए उसने वहीं से एक सीपी लेकर उसे तोड़ा और उसका गूदा मुँह में डाल लिया।

पानी और आकाश में तरह–तरह के रंग झिलमिलाकर, छोटे–छोटे द्वीपों की तरह समुद्र में बिखरी स्याह चट्टानों की चोट से सूर्य उदित हो रहा था। घाट पर बहुत–से लोग उगते सूर्य को अर्ध्य देने के लिए एकत्रित थे। घाट से थोड़ा हटकर गवर्नमेंट गेस्ट–हाउस के बैरे सरकारी मेहमानों को सूर्योदय के समय की कॉफ़ी पिला रहे थे। दो स्थानीय नवयुवतियाँ उन्हें अपनी टोकरियों से शंख और मालाएँ दिखला रही थीं। वे लोग दोनों काम साथ–साथ कर रहे थे–मालाओं का मोल–तोल और अपने बाइनाक्युलर्ज़ से सूर्य–दर्शन। मेरा साथी अब मोहल्ले–मोहल्ले के हिसाब से मुझे बेकारी के आँकड़े बता रहा था। बहुत–से कडल–काक हमारे आसपास तैर रहे थे–वहाँ की बेकारी की समस्या और सूर्योदय की विशेषता, इन दोनों से बे–लाग।

मेरे साथियों का कहना था कि लौटते हुए नाव को घाट की तरफ़ से घुमाकर लाएँगे, हालाँकि मल्लाह उस तूफ़ान में उधर जाने के हक़ में नहीं थे। बहुत कहने पर मल्लाह किसी तरह राज़ी हो गये और नाव को घाट की तरफ़ ले चले। नाव विवेकानन्द चट्टान के ऊपर से घूमकर लहरों के थपेड़े खाती उस तरफ़ बढ़ने बढ़ने लगी। वह रास्ता सचमुच बहुत ख़तरनाक था–जिस रास्ते से हम आये थे, उससे कहीं ज़्यादा। नाव इस तरह लहरों के ऊपर उठ जाती थी कि लगता था नीचे आने तक ज़रूर उलट जाएगी। फिर भी हम घाट के बहुत क़रीब पहुँच गये। ग्रेजुएट नवयुवक घाट से आगे की चट्टान की तरफ़ इशारा करके कह रहा था, "यहाँ आत्महत्याएँ बहुत होती हैं। अभी दो महीने पहले एक लड़की ने उस चट्टान से कूदकर आत्म–हत्या कर ली थी।"

मैंने सरसरी तौर पर आश्चर्य प्रकट कर दिया। मेरा ध्यान उसकी बात में नहीं था। मैं आँखों से तय करने की कोशिश कर रहा था कि घाट और नाव के बीच अब कितना फ़ासला बाक़ी है।

एक लहर ने नाव को इस तरह धकेल दिया कि मुश्किल से वह उलटते–उलटते बची। आगे तीन–चार चट्टानों के बीच एक भँवर पड़ रहा था। नाव अचानक एक तरफ़ से भँवर में दाख़िल हुई और दूसरी तरफ़ से निकल आयी। इससे पहले कि मल्लाह उसे सँभाल पाते, वह फिर उसी तरह भँवर में दाख़िल होकर घूम गयी। मुझे कुछ क्षणों के लिए भँवर और उससे घूमती नाव के सिवा और किसी चीज़ की चेतना नहीं रही। चेतना हुई जब भँवर में तीन–चार चक्कर खा लेने के बाद नाव किसी तरह उससे बाहर निकल आयी। यह अपने–आप या मल्लाहों की कोशिश से, मैं नहीं कह सकता। भँवर से कुछ दूर आ जाने पर ग्रेजुएट नवयुवक ने बताया कि हम उस चट्टान को लगभग छूकर आये हैं जिस पर से कूदकर उस नवयुवती ने कन्याकुमारी की साक्षी में आत्महत्या की थी। पर मैंने तब तक उस चट्टान की तरफ़ ध्यान से नहीं देखा जब तक हम किनारे के बहुत पास नहीं पहुँच गये। यह

भी वहाँ पहुँचकर जाना कि घाट की तरफ़ से आने का इरादा छोड़कर मल्लाह उसी रास्ते से नाव को वापस लाये हैं जिस रास्ते से पहले ले गये थे।

कन्याकुमारी के मन्दिर में पूजा की घंटियाँ बज रही थीं। भक्तों की एक मंडली अन्दर जाने से पहले मन्दिर की दीवार के पास रुककर उसे प्रणाम कर रही थी। सरकारी मेहमान गेस्ट–हाउस की तरफ़ लौट रहे थे। हमारी नाव और किनारे के बीच हल्की धूप में कई एक नावों के पाल और कडलकाकों के पंख एक–से चमक रहे थे। मैं अब भी आँखों से बीच की दूरी नाप रहा था और मन में बसों का टाइम–टेबल दोहरा रहा था। तीसरी बस नौ चालीस पर, चौथी.....।

उसके बाद एक शाम और वहाँ रुककर कनानोर लौट गया। वहाँ जाकर अपने लिखे काग़ज़ मिल तो गये, पर तब तक चौकीदार ने उन्हें मोड़कर उनकी कॉपी बना ली थी। काग़ज़ों पर लिखाई एक ही तरफ़ थी, इसलिए उनके ख़ाली हिस्सों पर उसने अपना हिसाब लिखना शुरू कर दिया था। जब मैंने वह कॉपी उससे ली, तो उसे शायद उससे कम निराशा नहीं हुई जितनी कन्याकुमारी पहुँचकर अपना सूटकेस खोलने पर मुझे हुई थी।

कठिन शब्दार्थ

विस्तार	–	फैलाव
संगम	–	मिलन स्थल
क्षितिज	–	जहाँ धरती और गगन के मिलने का आभास हो।
चोटी	–	शिखर
झुरमुट	–	पेड़ या झाड़ी जिनकी डालियाँ मिलकर कुंज–सा बना रही हों।
सुरमई	–	सुरमे के रंग का; हल्का नीला
हिन्दसे	–	अंक यानी 1,2,3 को अरबी में हिन्दसे कहते हैं। कारण कि अंक योजना हिन्द से गई थी।
कडलकाकों	–	समुद्री पक्षी

अभ्यासार्थ प्रश्न

वस्तुनिष्ठ प्रश्न –

1. मोहन राकेश ने किस कहानी पत्रिका का सम्पादन किया?
   (क) सारिका (ख) दिनमान (ग) धर्मयुग (घ) कल्पना
2. सुनहले सूर्योदय और सूर्यास्त की भूमि है –
   (क) हिन्द महासागर (ख) अरब सागर
   (ग) बंगाल की खाड़ी (घ) कन्याकुमारी

अतिलघूत्तरात्मक प्रश्न –

3. कन्याकुमारी में किन तीन सागरों का संगम होता है?
4. विवेकानन्द ने कहाँ समाधि लगायी थी?
5. लेखक को किन पेड़ों के झुरमुट दिखाई दिए?
6. कनाकोर के होटल में लेखक क्या भूल आया था?
7. कन्याकुमारी भारत के किस राज्य में है?

लघूत्तरात्मक प्रश्न –

8. सूर्यास्त के समय समुद्र के पानी का किन विविध रंगों में परिवर्तन हुआ?
9. सूर्यास्त के बाद लेखक के मन में क्या डर समाया?
10. सूर्योदयकालीन क्षणों में लेखक ने क्या देखा?
11. ग्रेजुएट नवयुवक से लेखक की क्या बातचीत हुई?

निबंधात्मक प्रश्न –

12. नवलेखन में बहुतायत अंग्रेजी शब्दों का प्रयोग हो रहा है? क्या इसे आप सही मानते हैं? इस पाठ में जिन अंग्रेजी शब्दों का प्रयोग हुआ है; उसकी सूची बनाएँ।
13. "भारत प्रकृति का खूबसूरत उपहार है" – पाठ के आलोक में इस कथन की व्याख्या कीजिए।
14. निम्नलिखित पंक्तियों की सप्रसंग व्याख्या कीजिए –
    (क) मैं देख रहा था और अपनी पूरी चेतना से ..... एक जीवित व्यक्ति, दूर से आया यात्री, एक दर्शक।
    (ख) सूर्य का गोला पानी की सतह से छू गया..... लहू भी धीरे–धीरे बैज़नी और बैज़नी से काला पड़ गया।